मिथकों की कमज़ोर बुनियाद पर 'आधार' संख्या

आर. रामकुमार

दो देश। दोनों देशों के प्रधानमंत्रियों के पंसदीदा प्रोजेक्ट। दोनों प्रोजेक्ट के बीच समानांतर देखे जा सकते हैं। 'पहचान पत्र विधेयक 2004' के लिए समर्थन जुटाने की कवायद में नवंबर 2006 में ब्रिटेन के तत्कालीन प्रधानमंत्री टोनी ब्लेयर ने लिखा था, 'पहचान पत्र का मामला केवल स्वतंत्रता का नहीं, बल्कि आधुनिक दुनिया का है।' सितंबर 2010 में नंदुरबार में पहला आधार नंबर वितरित करते हुए भारतीय प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने कहा, 'आधार नए और आधुनिक भारत का प्रतीक है।' ब्लेयर ने कहा था, 'पहचान पत्र में हम आधुनिक प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल करने की कोशिश कर रहे हैं।' लगभग ऐसी ही बात मनमोहन सिंह ने भी कहीः 'आधार प्रोजेक्ट आज की नवीनतम और आधुनिक प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल करेगा।' समानताएं अंतहीन हैं।

पहचान पत्र को लेकर ब्लेयर की हठधर्मिता अंततः लेबर पार्टी के लिए राजनीतिक विध्वंस लेकर आई। ब्रिटेन की जनता इस प्रोजेक्ट का पांच साल से विरोध करती आ रही थी। अंततः कैमरून सरकार ने 2010 में पहचान पत्र कानून को रद्द कर दिया। इस तरह पहचान पत्रों को समाप्त कर दिया गया और राष्ट्रीय पहचान रजिस्टर की योजना बनाई गई। इसके विपरीत भारत 'आधार' प्रोजेक्ट को बड़े ज़ोर-शोर से आगे बढ़ा रहा है। इस प्रोजेक्ट को विशिष्ट पहचान प्रोजेक्ट (यूआईडी) भी कहा जाता है। यूआईडी प्रोजेक्ट को गृह मंत्रालय के राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर (एनपीआर) के साथ भी एकीकृत किया गया है। 'भारतीय राष्ट्रीय पहचान प्राधिकरण विधेयक' संसद में पेश किया जा चुका है। दुनिया भर में पहचान सम्बंधी नीतियों के पर्यवेक्षकों की नज़र इस बात पर टिकी हुई है कि 'आधुनिक' दुनिया से भारत ने कुछ सबक सीखे हैं या नहीं।

ब्रिटेन में पहचान पत्र सम्बंधी अनुभव बताते हैं कि ब्लेयर अपनी इस योजना का प्रचार मिथकों के मंच पर खड़े होकर कर रहे थे। पहले तो उन्होंने ऐलान किया कि पहचान पत्रों के लिए नामांकन 'स्वैच्छिक' होगा। फिर उन्होंने तर्क दिया कि इन पहचान पत्रों से राष्ट्रीय स्वास्थ्य प्रणाली और अन्य कल्याण कार्यक्रमों में भ्रष्टाचार पर विराम लगेगा। ब्रिटिश सांसद और लेबर पार्टी के वरिष्ठ नेता डेविड ब्लंकेट ने पहचान पत्र को 'अधिकार पत्र' तक कह दिया था। ब्लेयर ने यह दलील भी दी थी कि ये पहचान पत्र नागरिकों को 'आतंकवाद' और 'पहचान सम्बंधी धोखाधड़ी' से बचाएंगे। इसके लिए बायोमेट्रिक्स प्रौद्योगिकी को अचूक हथियार के तौर पर पेश किया गया था।

इन सभी दावों पर जानकारों और आम लोगों ने सवाल उठाए थे। लंदन स्कूल ऑफ इकॉनॉमिक्स द्वारा बेहद सावधानी के साथ तैयार की गई रिपोर्ट में प्रत्येक दावे का विश्लेषण किया गया और उन्हें खारिज कर दिया गया था। रिपोर्ट में कहा गया था कि सरकार इस पहचान पत्र को इतनी योजनाओं के लिए अनिवार्य बना रही है कि अंततः प्रत्येक नागरिक के लिए उसे बनवाना अपरिहार्य हो जाएगा। रिपोर्ट में यह भी कहा गया था कि पहचान पत्र से योजनाओं में पहचान सम्बंधी धोखाधड़ी नहीं रुक पाएगी। वजहः बायोमेट्रिक इतनी विश्वसनीय प्रणाली नहीं है कि इससे नकल पूरी तरह रुक ही जाएगी।

भारत में एक अरब से भी अधिक लोगों को यूआईडी संख्या मुहैया करवाने वाले इस आधार प्रोजेक्ट के पक्ष में भी लगभग यही दलीलें दी जा रही हैं। मेरा मानना है कि आधार को भी मिथकों की बुनियाद पर प्रचारित किया जा रहा है। यहां पेश हैं इनमें से तीन मिथक :

मिथक 1: आधार संख्या अनिवार्य नहीं है

हकीकत : आधार को पिछले दरवाज़े से अनिवार्य कर दिया गया है। आधार को एनपीआर की तैयारियों के साथ जोड़ दिया गया है। 'जनगणना' की वेबसाइट पर लिखा

गया है, 'एनपीआर के तहत एकत्रित आंकड़े भारतीय विशिष्ट पहचान प्राधिकरण को दिए जाएंगे ताकि उनमें दोहराव न हो। उनकी अद्वितीयता सुनिश्चित होने के बाद प्राधिकरण यूआईडी संख्या जारी करेगा। यह यूआईडी संख्या एनपीआर का ही हिस्सा होगी और एनपीआर कार्ड पर भी यही संख्या अंकित रहेगी।'

एनपीआर वर्ष 2003 में नागरिकता कानून 1955 में हुए एक संशोधन की बदौलत अस्तित्व में आया। नागरिकता नियम 2003 के नियम 3(3) के अनुसार भारतीय नागरिकों के राष्ट्रीय रजिस्टर में दर्ज़ प्रत्येक नागरिक की सूचनाओं में उसका 'राष्ट्रीय पहचान नंबर' ज़रूर होना चाहिए। नियम 7(3) कहता है, 'यह नागरिकों का दायित्व है कि वे नागरिक पंजीकरण के स्थानीय रजिस्ट्रार के पास जाकर सही जानकारियां दर्ज़ करवाएं।' यही नहीं, नियम 17 कहता है कि नियम 5, 7, 8, 10, 11 और 14 के प्रावधानों का उल्लंघन करने पर एक हज़ार रुपए तक का आर्थिक दंड लगाया जा सकता है।

निष्कर्ष बहुत सीधा हैः संसद में विधेयक के पारित होने से पहले ही आधार को अनिवार्य बना दिया गया है। इस प्रोजेक्ट की आड़ में सरकारें लोगों को उनकी व्यक्तिगत सूचनाएं देने को विवश कर रही हैं।

मिथक 2: आधार अमरीका में लागू सामाजिक सुरक्षा नंबर (एसएसएन) जैसा ही है

हकीकत : एसएसएन और आधार के बीच अंतर है। एसएसएन अमरीका में 1936 में सामाजिक सुरक्षा सम्बंधी लाभ मुहैया करवाने के मकसद से लागू किया गया था। इसे निजता कानून 1974 द्वारा सीमित कर दिया गया है। निजता कानून कहता है, 'किसी भी नागरिक द्वारा अपना सामाजिक सुरक्षा नंबर न बताने पर भी कोई सरकारी एजेंसी उसे उसके अधिकारों, लाभों अथवा सुविधाओं से वंचित नहीं कर सकती। ऐसा करना गैर कानूनी होगा।' इसके अलावा किसी तीसरे पक्ष को किसी व्यक्ति का एसएसएन बताने से पहले उस नागरिक को सूचना देकर उसकी सहमति लेनी होगी।

एसएसएन की परिकल्पना पहचान के दस्तावेज़ के रूप में नहीं की गई थी। हालांकि 2000 के दशक में एसएसएन का व्यापक उपयोग विभिन्न जगहों पर पहचान के प्रमाण के रूप में करना शुरू हुआ। इसके परिणामस्वरूप कई तरह की निजी कंपनियों के हाथों में नागरिकों के एसएसएन पहुंचे। पहचान सम्बंधी धोखाधड़ी करने वालों ने इसका दुरुपयोग बैंक खातों, क्रेडिट खातों और निजी दस्तावेज़ों व व्यक्तिगत जानकारियों तक सेंध लगाने में किया। वर्ष 2006 में गवर्नमेंट एकाउंटेबिलिटी ऑफिस के अनुसार एक साल की अवधि में ही करीब एक करोड़ लोगों (अमरीका की वयस्क आबादी का 4.6 फीसदी) ने बताया कि उन्हें विभिन्न तरह की पहचान सम्बंधी धोखाधड़ियों का सामना करना पड़ा। इससे 50 अरब डॉलर से भी अधिक का नुकसान उठाना पड़ा।

लोगों के हो-हल्ले के बाद अमरीकी राष्ट्रपति ने वर्ष 2007 में पहचान सम्बंधी धोखाधड़ियों पर एक कार्यबल गठित किया। इस कार्यबल की रिपोर्ट पर कार्रवाई करते हुए राष्ट्रपति ने एक योजना की घोषणा कीः 'पहचान सम्बंधी धोखाधड़ियों का मुकाबला : एक रणनीतिक योजना'। इसके तहत सभी सरकारी अधिकारियों को एसएसएन के अनावश्यक उपयोग को खत्म अथवा कम करने तथा साथ ही जहां भी संभव हो, लोगों की व्यक्तिगत पहचान के लिए इसकी ज़रूरत को समाप्त करने के निर्देश दिए गए। लेकिन भारत में इसका ठीक उलटा हो रहा है। नंदन निलेकणी के अनुसार आधार संख्या को सर्वव्यापी बनाया जाएगा। उन्होंने तो यहां तक सलाह दे डाली कि लोग इसे टैटू की तरह अपने शरीर पर गुदवा लें।

मिथक 3: बायोमेट्रिक्स के इस्तेमाल से पहचान सम्बंधी धोखाधड़ियां रोकी जा सकती हैं

हकीकतः वैज्ञानिकों और विधि विशेषज्ञों में इस बात को लेकर सर्वसम्मति है कि पहचान को साबित करने में बायोमेट्रिक्स के इस्तेमाल को सीमित किया जाना चाहिए। सबसे पहले तो ऐसी कोई पुख्ता जानकारी नहीं है कि उंगलियों के निशान के मिलान में त्रुटियां बिलकुल नहीं अथवा नगण्य होती हैं।

ऐसा हमेशा होगा कि तैयार डेटाबेस के रूबरू

कुछ लोगों की पहचान का गलत मिलान होगा या मिलान ही नहीं होगा। फिर मिलान सम्बंधी त्रुटियां भारत जैसे देशों में और भी बढ़ जाएंगी। बायोमेट्रिक उपकरणों की आपूर्ति के लिए भारतीय विशिष्ट पहचान प्राधिकरण ने जिस *4जी आइडेंटिटी साल्यूशंस* नामक कंपनी को ठेका दिया है, वह कहती हैः 'ऐसा अनुमान है कि किसी भी आबादी में पांच फीसदी लोगों की उंगलियों के निशान चोटों, उम्र अथवा निशानों की अस्पष्टता के कारण पढ़े नहीं जा सकते। भारत जैसे देश का अनुभव यही कहता है कि यह समस्या 15 फीसदी लोगों के मामले में सामने आती है क्योंकि यहां की आबादी का एक बड़ा हिस्सा शारीरिक श्रम के कामों में लगा है।' पंद्रह फीसदी का मतलब होगा करीब 20 करोड़ लोगों का इस प्रणाली से बाहर रहना। अगर फिंगरप्रिंट रीडर्स को मनरेगा के कार्यस्थलों, राशन की दुकानों इत्यादि पर इस्तेमाल किया जाएगा, तो करीब 20 करोड़ लोग इन योजनाओं की पहुंच से बाहर हो जाएंगे।

भारतीय विशिष्ट पहचान प्राधिकरण की 'बायोमेट्रिक्स स्टैंडर्ड कमेटी' की रिपोर्ट ने भी माना है कि ये चिंताएं वास्तविक हैं। उसकी रिपोर्ट कहती है,'किसी की अद्वितीयता का निर्धारण करने में सबसे ज़रूरी फिंगरप्रिंट की गुणवत्ता का भारतीय संदर्भों में गहराई से अध्ययन नहीं किया गया है।' तकनीक की इतनी सीमाओं के बावजूद सरकार इस प्रोजेक्ट को आगे बढ़ा रही है। इस पर खर्च 50 हज़ार करोड़ रुपए से भी ज़्यादा आएगा।

कहा जाता है कि सत्य का सबसे बड़ा शत्रु झूठ नहीं, बल्कि मिथक होते हैं। एक लोकतांत्रिक सरकार को आधार जैसे विशाल प्रोजेक्ट को केवल मिथकों के धरातल से नहीं चलाना चाहिए। ब्रिटेन का अनुभव बताता है कि सरकार के मिथकों का भंडाफोड़ नागरिक अभियानों के ज़रिए किया जा सकता है। भारत को भी ऐसे ही विशाल अभियान की ज़रूरत है जो आधार प्रोजेक्ट के मिथकों को तोड़ सके। ***(स्रोत फीचर्स)***